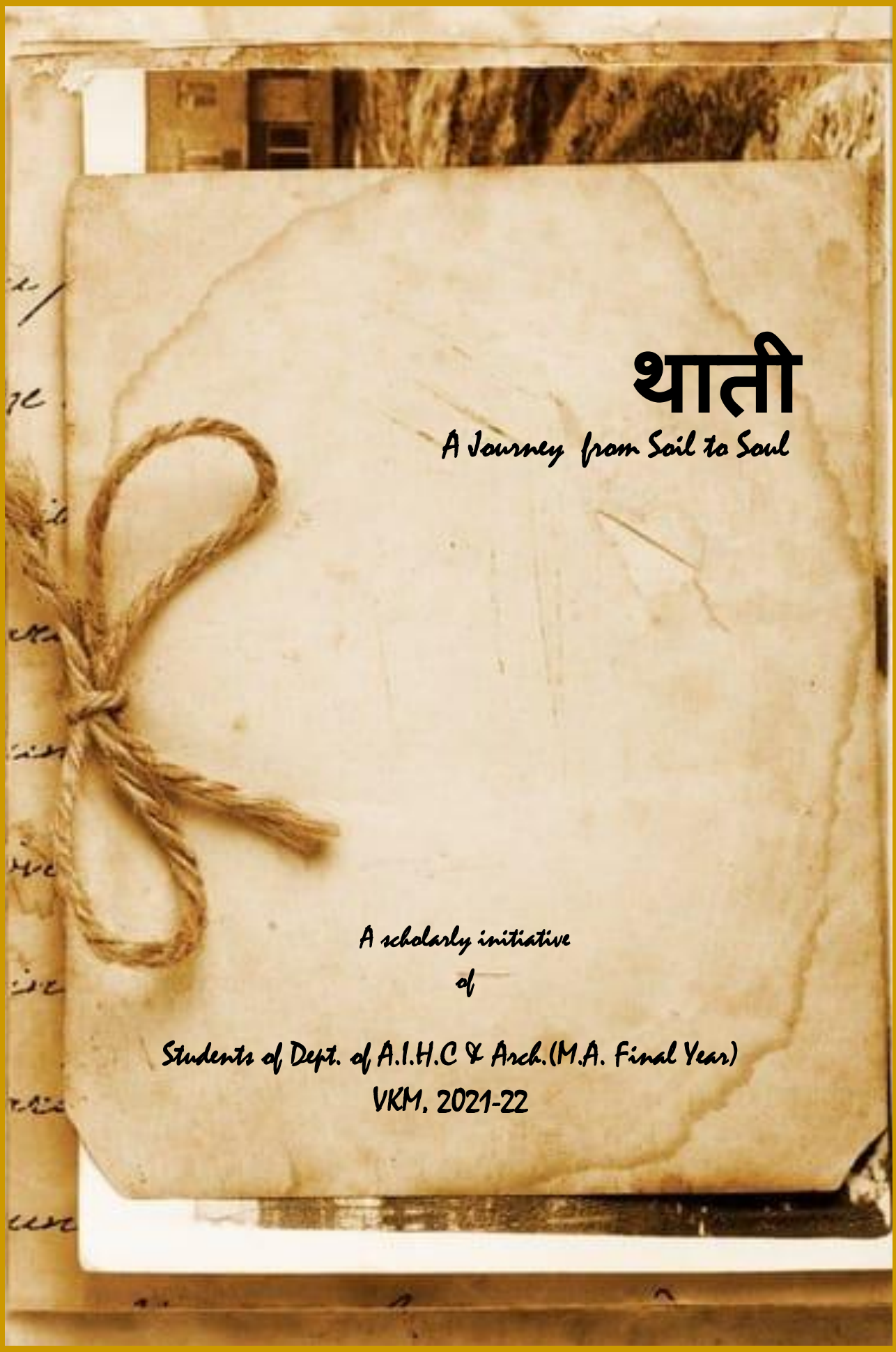

थाती

A Journey from Soil to Soul

A scholarly initiative

of

Students of Dept. of A.I.H.C & Arch.(M.A. Final Year)

VKM, 2021-22

PREFACE

Welcome to the second issue of 'थाती' : Journey from Soil to Soul. This magazine is a special approach to celebrate world Heritage week from the students of department of A.I.H.C & Archaeology, Vasant Kanya Mahavidyalaya Kamachha,Varanasi . All the articles are written by our team and inspired by their knowledge on different subjects of our Heritage. Each and every article will surely surprise you with the modesty of original documentation by learners of the discipline, so break this line of curiosity and tie your excitement belt to take a visit of Second edition of 'थाती'.

INDEX

1.	PREFACE	1
2.	INTRODUCTION	3
3.	बनारसी साड़ी: गौरव का परिधान	4
4.	LORD NARASIMHA INCARNATION FROM PILLAR	7
5.	धरमेर का किला	10
6.	चुनार का किला	13
7.	पीतल के बर्तन	15
8.	स्वाद-ए-बनारस	16
9.	रत्नेश्वर मन्दिर	19
10.	प्रयागराज के पौराणिक स्थल	22
11.	लोलार्क कुंड	26
12.	काशी: एक संगम	29
13.	Team's Experience	35

INTRODUCTION

The culture that has played a vital role in everyone's life, holds many memories, sacrifices, power of unity and hardwork; culture, which has blessed our vision continues to fascinate more and more .Culture that belongs to me and to us ; culture, which is the expression of our believes, which acquires form of a temple, a place to worship, reflections of ourselves to cherish our happiness or to complaint our sorrow and where everyone stands with equal dignity. Culture which is embodiment of our ideals, taken shape of a statue makeing us feel more powerful and amazed at its form. The soulful sound of that giant bell, which cleans every negativity, is equally an echo of our culture to which we live . Culture which is also exhibited in the culinary art and drapings to reveal the beauty of persona and how we show our hospitality, our love and our care too. Every story comes from different regions based on its environment, culture and past. A present derived from past makes us feel proud about how our ancestors built every monument using their own technique and good -will of doing something for their successors. Let's celebrate that culture, that beauty of our history and experience it through our writer's views.

संस्कृति

संपूर्ण धरा में, विश्व पटल पर,
भारतीय संस्कृति ऐसी है,
दूसरी नहीं कोई विस्तृत ऐसी,
सागर संगम जैसी है,
ज्ञान विज्ञान में अभूतपूर्व,
विश्व विरासत में यह अनोखी है,
है सांस्कृतिक रूप से महान,
विविधता में एकता की समीकृति है,
आर्यवर्त, भारतवर्ष अनेक इसके उपनाम है,
धर्म, कला, संस्कृति में अद्‌वितीय, ये महान है,
संपूर्ण जगत पर प्रभाव दिखलाती अनेक ऋतुएं यहां मिलती हैं,
एक वाटिका में अनेक पुष्प की भांति संपूर्ण पटल पर खिलती है,
भाषागत, शिष्टाचार की धार्मिकता की परिशुद्‌धता है,
है भिन्नता होने पर भी संस्कृति में संपूर्णता है,
उदारता, एकता, अपनाकर इसे यूं ही परिपूर्ण रूप से सजाना है,
समता, समन्वय, स्थापित कर अक्षुण्ण इसे बनाना है।

बनारसी साड़ी: गौरव का परिधान

बनारस देश कि सांस्कृतिक राजधानी कई पहलुओं में ना केवल देश में बल्कि देश के बाहर भी अपना रंग बिखेरती है, उन्हीं धरोहरों में से एक है "बनारसी साड़ी" जिसकी पहचान बनारस से होती है, अब ये बनारस के साथ - साथ और भी कई जगहों पे बुनी जाने लगी जैसे - मऊ, मुबारकपुर, खैराबाद, चन्दौली। जिसका प्रेणा स्त्रोत बनारस था। बनारसी साड़ी सिर्फ बनारस या भारत के राज्यों में ही नहीं बल्कि विदेशो में भी अपना वर्चस्व दर्शाती हैं। बनारसी साड़ी विदेशो में बस कला को नहीं प्रदर्शित करती ये अर्थव्यवस्था का भी अच्छा स्त्रोत है। वैसे तो बनारसी साड़ी कि बुनाई - रेशम, ज़री व कीमती धागों से कि जाती है, पर इतिहास की छिद्र में झाकने से पता चलता है कि बनारसी साड़ी कि बुनाई शुद्ध सोने व चांदी के तारों से भी हो रही थी जो कि बड़े व शाही परिवार कि पहली पसंद हुआ करती थी। बनारसी साड़ी एक अलग पहचान रखती है, इसकी बनावट, कारीगरी, व हैंड पेंट कि मदद से इसको और भी निखारा जाता है, जो कि बुनकरों व कारीगरों के हुनर को दर्शाती है।

अगर इसके इतिहास के बारे में बात करें तो रामायण में उल्लेखित है कि साड़ी का परिधान के रूप में परिचय हो चुका था परंतु मुगलों के भारत आगमन के साथ ही वस्त्रकला का सही तौर पर प्रचलन हुआ, मुगलो ने हि बनारसी सिल्क का परिचय कराया। बनारसी साड़ी जैसे हि कला का प्रयोग करके अन्य वस्त्र जैसे- पगड़ी, साफा, दुपट्टों, का बनाना प्रारम्भ हुआ। चुँकि भारत में साड़ी का प्रचलन ज्यादा था और बनारसी साड़ी एक अलग अनुभव और परंपरा को उजागर करती थी इसलिए इसका महत्व और अधिक हो जाता था। इसमें ईरान, ईराक़, बुखारा शरीफ आदि जगहों से आए अलग-अलग प्रकारो के डिज़ाइन को साड़ी मे ताना-बाना देकर उकेरा जाता था, इन डिज़ाइन को 'मोटिफ' शब्द से जाना जाता है, इनमे - बेल, बुटी आँचल, कोनिया आदि डिज़ाइन थे।

बनारसी साड़ी को बुनने की तकनीक सरल ना थी, इसको बनाने के लिए ताने में कतान और बाने मे पाट - बाना प्रयोग किया जाता था जिसके परिणाम स्वरूप कपड़ा काफी मुलायाम और गफ्दार बनता है। बुनकर बन्धुओ कि हाथो की तकनीक धागो को पिरो कर उसे एक खूबसूरत परिधान में परिवर्तित करने का हूनर किसी भी आम इंसान के सोच के परे है। एक स्त्रोत से पता चलता है कि पहले के समय में नक्शा, जाला से साड़ी बनाई जाती थी लेकिन अब के समय में डाबी तथा जेकार्ड का उपयोग होने लगा जो कि परंपरा से हटकर माना जाने लगा। बनारसी साड़ी को बनाने में उपयोग होने वाला कपड़ा प्योर सिल्क, कतान इत्यादि है।

इस आर्टिकल को लिखते वक़्त बनारसी साड़ी को अनुभव के नजरिए से जानने कि जिज्ञासा मे मेरी मुलाक़ात बजरडिहा निवासी जैद जी से हुई जिनका खुद का लूम हाउस है, हैंडलूम व पावरलूम दोनों प्रकार से यहाँ साड़ी कि बुनाई का काम होता है, जो कि उनके पूर्वजो का तौहफा है। उसी हैंडलूम मे 35 वर्षो का अनुभव लिए 52 साल के न्याद अहमद साहब जिन्होंने पांचवी तक पढ़ाई कि और उसके बाद अपने पिता जी के साथ बनारसी साड़ी के कारोबार मे अपना हाथ आजमाया बताते है कि बनारसी साड़ी दो तरह कि होती है, एक फेकुआ और दूसरी कढुआ। ढ़रकी पर जब साड़ी कि बुनाई होती है, उसी वक़्त सिरकी से डिज़ाइन को काढ़ा जाता है। इस कारीगरी मे कम से कम दो कारीगरों का होना जरूरी है, एक साड़ी कि बुनाई करता है तो दूसरा उसी वक़्त इस पर रेशम व जरी के धागों से कढ़ाई करता जाता है।

* इसकी एक खासियत है कि एक बूटी से दूसरी बूटी के बीच धागे नहीं होते।
* एक साड़ी को तैयार करने में कम से कम एक महीने तक का समय लगता है।
* चूँकी समय और मेहनत ज्यादा है इसलिए इसकी कीमत भी ज्यादा होती हैं।

वही दूसरी तरफ पॉवरलूम से बिनाई कि बात करें तो जैद जी बताते कि एक साड़ी को बनाने में 1.5 किलोग्राम धागो का इस्तेमाल होता है, और इसे बनने में कम से कम 5-6 घंटे का समय लगता है।

* बनारसी साड़ी के दूसरे पहलु को देखें तो उसमें हैंड पेंटेड साड़ी का भी नाम आता है, जो कि बनारसी साड़ी का हि एक अपडेटेड वर्जन है।

इसमें बनारसी साड़ी के मोटिफ को सिल्क कलर से भरने और पेंट व ब्रश की मदद से अलग-अलग डिज़ाइन बनाकर तैयार कि जाती हैं।

* इसमें इस्तेमाल होनें वाला कपड़ा- सिल्क, सिफ्फोन, टसर होते है।
* इस साड़ी को बनाने के लिए साड़ी को 6.5-7 मीटर के टेबल पर कील के सहायता से फास कर ब्रश से डिज़ाइन बनाया जाता है।
* एक साड़ी बनाने में 1-2 घंटे का समय लगता है।

इसकी जानकारी मुझे मोकीम साहब ने दी जिनकी उम्र 28 वर्ष है, साड़ी का कारोबार इनकी खानदानी परंपरा है।

* इनके दो पुराने और अनुभवी कारीगरी जो कि 30 वर्षो का अनुभव रखते है - विश्राम और जयप्रकाश वे बताते है कि खुद से डिज़ाइन को सोचकर उसमें मैचिंग कलर को भरना जितना आसान लगता है उतना होता नहीं ।

* बनारसी साड़ी का एक भाग हैण्ड पेंटेड साड़ी भी देश के साथ-साथ विदेशो में भी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है।

अपने अनुभव कि बात करुँ तो इतने पुराने कला को देखकर उसकी तकनिकी को समझकर बहुत ख़ुशी मेहसुस हुई, आँखों को भरोसा दिलाना मुस्किल सा था कि कैसे हमारे देश की परंपरा कितने लोगों कि मेहनत और हूनर पर टिकी हुई है।

एक समय था जब बनारसी साड़ी, बनारस कि अर्थव्यवस्था का मुख्य स्तम्भ हुआ करती थी। आज बनारसी साड़ी मुगलई और भारतीय संस्कृति का मिश्रण है। इसकी कला को सीखने के लिए कई वर्षो का अनुभव होना ज़रूरी है। यही वजह है कि इसमें काम करने वाले कारीगर छोटी उम्र से इसमें लग जाते हैं।

एक बनारसी साड़ी कि कीमत हज़ारों में होती है। इतनी पुरानी कला होने के बाद भी ये हर महिला कि पसंद है और इसका डिमांड अभी भी उतना हि है। अगर इन्हे और सप्पोर्ट मिले तो ये और भी निखर सकते है।

शिवानी सेठ

LORD NARASIMHA INCARNATION FROM PILLAR

Very few people know that there is still a place in Sikligarh of Banmankhi block of Purnea district of Bihar where Lord Narasimha incarnated from a pillar to protect the devotee Prahlad in the fort of Hiranyakashyap. The pillar (popularly known as prahlad stambh) associated with the incarnation of Lord Narasimha is still present there. It is said that many attempts were made to break this pillar many times, it was bent but did not break. At this place also exists a modern temple dedicated to the Narasimha avatar of Vishnu. The temple has the idol of Narasimha Vishnu in the Sanctum Sanctorum surrounded by different enclosures containing other prominent deities of the Hindu religion.

This was the place related to Hiranyakashyap's attempted slaghter of his son Prahlad for devotion to the worship of lord Vishnu. There is an underground pillar known as "Prahlāda khamba". It is said to be the pillar from which Narasiṁha, the half-man half-lion avatara, manifested to kill Hiranyakashap. Adjacent to the pillar is a large temple devoted to Lord Narasiṁha. Allegedly, attempts to excavate or move the "Prahlada khamba" have failed. Dharahara, a village extreme west of the district Purnea approx. 30 km, situated about 12 miles to the south of Raniganj and a few miles north of Dhamdaha. At the northwest corner is Monolith called Manikdham. The stone is light reddish granite of such fine texture as to appear almost like sandstone. It is inclined at an angle of about 65 degrees. The old fort, ruin, is called Satlgarh.

The material, the circumference and the surface polish of this pillar are so identical with those of the Ashokan pillars. In view of many scholars, this pillar is Ashokan too. The surviving portion could be the top of the pillar, the hole at the top suggesting a 'capital' as in most other Mauryan pillars. The location being on a major eastern route from Pataliputra also suggests its having been erected by Ashoka himself.

The dimensions of the pillar were noted as having a total length of 19 feet, 11 inches (of which 7.5 feet was above ground); and with circumference at 3 feet from summit being 112.5 inches.

The ASI Annual Archaeological Review of 1957-58 mentions about the Sikligarh pillar as having been discovered by Shri A.C. Banerji who “found a pillar resembling an Asokan monolith at Sikligarh.” But the Sikligarh pillar was surely not discovered by Mr. Banerji, having earlier been reported upon by Buchanan in his reports of Purnea (1809-10), as well as by Waddell for the Proceedings of the Asiatic Society of Bengal in 1890.

In the special issue of the 31st year of the Hindu religious magazine "Kalyan", giving a special description of Sikligarh. In the Bhagavata Purana (the eighth chapter of the seventh skandha) about the place of Manikya pillar now known as prahladh stambh, it is mentioned that Lord Vishnu protected the devotee Prahlad by taking Narasimha avatar from this pillar. During my visit to site with my grandfather he took me to a spot just behind the temple where now exists a quadrangular platform enclosed by a grilled boundary. Within this quadrangle was found protected the ancient pillar of Sikligarh, probably the most ancient historical relic known so far from Purnea. During my visit, the pillar was found as partly covered with a silken cloth supposedly to denote the sanctity of the pillar as well as to protect it. A part of the pillar is above ground while a major portion is underground. The pillar retains its ancient polish and bears testimony to the skill of the ancient craftsman. One needs to take off footwear before approaching the highly venerated pillar which is an object of worship also now flanked by an image of Prahlada and another of Lord Hanumana in its near vicinity. An old narrow well exists within the marked quadrangle, the origin of which is not known. An ancient water bearing pot was also placed in the near vicinity and was reported as having been recently discovered from one of the nearby mounds.

My grandfather said that a river named "Hiranya" flows here. He told that till a few years ago, by putting stones in the hole of the Narasimha pillar, the stone used to reach the river. The specialty of this place is that Holi is played here with ash and soil. Rakesh Kumar, secretary of the trust, says that when Holika was burnt and Prahlad had come back safely from the pyre, then people celebrated happiness by applying ashes and soil on each other and since then Holi started. He told that at the time of Holika Dahan, many people are present here and play Holi with ash and soil fiercely. Even today the people of Mithila play Holi with ash and soil instead of colour.

A large brick mound is seen just in front of the modern temple, and representing the remains of a temple. The temple mound is in existence along with an enclosure in which is placed an image of Saint Mauni baba, who seems to have stayed at the place. The location of the present Narsimha temple is ascribed to the same Mauni baba. A look at the site suggested as its having been the foundation of a brick structure which may have been even a Buddhist Stupa.

I got to know some information from the newspaper that An Ekamukha Siva linga of the Pala period has also been reported from Sikligarh.. This along with the coin with Saivite legend may also indicate the seat of a Saivite establishment. Without doubt this is one of the most interesting sites in North Bihar, the story of which yet remains to be fully known. While punch marked coins of the Mauryan period have been discovered from places in neighbouring Saharsa district, the Mauryan rule in this area probably stands firmly indicated by the pillar. My conclusion is that some excavations will be necessary to arrive at a more precise and accurate understanding of this site. Till then, the mysteries would remain unresolved, and one may not with full confirmation identify the pillar as Ashokan pillar.

SHWETA MISHRA

धरमेर का किला

देवरिया जिला के लार रोड स्टेशन से 5 km. दूर स्थित फूलमती माता मंदिर स्थित है | आस-पास के लोगों का कहना है कि 5000 वर्ष पूर्व मझौलीराज परिवार के धरमेर स्थित महल में राजा उदय नारायण मल्ल के भाई दुखहरण मल्ल की एक पुत्री हुई | जिसकी शादी के समय माँ दुर्गा की सवारी ने वर को मार दिया | वर की चिता सतायी गयी, जिस पर कन्या ने अपने को समर्पित कर दिया | उसके बाद से यहाँ फूलमती माता का पूजा अर्चना होना प्रारंभ हो गया | इस किले को लेकर यह अनुश्रुति प्राप्त होती है कि धरमेर स्थित महल में 5000 वर्ष पूर्व मझौलीराज परिवार के उदय नारायण मल्ल के भाई दुखहरण मल्ल के यहाँ एक पुत्री ने जन्म लिया | जिसका नाम फूलमती था | फूलमती के विवाह के पूर्व पण्डितों ने ऐसा बताया कि इनके विवाह के समय शेर आयेगा और इनके वर को मार डालेगा |शेर न आये इसके लिए राजा ने महल के चारों ओर तलाब खुदवा दिया तथा उसमें पानी भरवा दिया | ऐसा माना जाता है कि जब फूलमती को उबटन लगाया गया उसको छुडाने पर जो निकला उसी से शेर बन गया और वर को मार दिया | वर की चिता के साथ कन्या ने भी आत्मदाह दिया | जिसके नाम पे वहाँ पूजा करना शुरू हो गया | बहुत समय बाद यहाँ बनवाया गया | यहाँ आस-पास के लोग पूजा करते हैं और ऐसा माना जाता है कि यहाँ हर मनोकामना पूरी होती हैं| मंदिर के समिप टिला है यहाँ के लोगों का मानना है कि उसमें महल है काफी पुराना होने के कारण उस पर मिट्टी जमा हो गई है उस पर बहुत सारे वृक्ष उग गए हैं| मंदिर से लगभग 1km. दूरी पर एक किला है | जिसमें 15-20 कमरे हैं जिसमें भोजन बनाने के लिए चूल्हे मिलते हैं घोड़े तथा हाथी को रखने के स्थानो के साथ-साथ तोप रखने हेतु जगह भी प्राप्त होते हैं| बांस के बने कलाकृति मिली है|

किला पूराना होने के कारण महल के अंदर बहुत सारे वृक्ष उग गये हैं तथा काफी हद तक महल टूट चुका है| महल के बाहर तथा बगल में कुआँ है| अंदर बहुत बड़ा आंगन है |

धरमेर स्थित महल से सम्बन्धित मझौली में महल मिलता है | यह कस्बा तीन ओर से नदी से घिरा है | यही पास के सोहनाग में परशुराम धाम स्थित है | इतिहासकार डा० दानपाल सिंह द्वारा लिखित विशेनवाटिका में उल्लिखित है कि पुरुषोत्तम राम के समय इस स्थान का नाम मध्य-वलिया मिलता है क्योंकि माता जानकी के मायके पटना बिहार और ससुराल अयोध्या के बीच स्थित है | मझौलीराज पर किसी वंश का स्थायी शासन नहीं रहा है | इस राज्य पर बार - बार आक्रमण होते रहे हैं जो सबल होता था वह यहाँ का राजा हो जाता था परन्तु राजभरो का शासन मझौलीराज पर समय -समय पर उतार - चढ़ाव के साथ ज्यादा समय तक रहा है | महल के तस्वीरो तथा लेखों से ऐसा ज्ञात होता है कि यहाँ सर्वप्रथम कुषाण शासकों को खदेड़कर दुसरी शदी में राजभरशिवम ने यहाँ शासन किया उसके बाद चौथी शदी में समुन्द्रगुप्त ने अपनी दिग्विजय के समय भारशिवो को परास्त करके यहाँ अपनी सत्ता कायम की थी | परन्तु राजभर बैठे नहीं रहे मौका पाकर मझौली पर कब्जा कर लिया | 8 वी शदी में राजभर शासक शिवविलास को हराकर राजा विश्वसेन ने अपनी सत्ता जाने का मलाल कम नहीं हुआ | कई दशकों के बाद राजभरों ने संगठित होकर यहाँ के राजा को परास्त करके यहाँ पुनः कब्जा कर लिया | मझौली के महाराज लाल खण्ड बहादुर मल्ल भी बहुत बडे विद्वान थे | वे इतिहास में रूचि लेते थे | उन्होंने विशेन वंश की इतिहास को संकलित कर विशेन वाटिका कि रचना की | विशेन वाटिका में उस समय की प्रचलित बातों को लिखी गयी है जो पूर्णरूपेण ऐतिहासिक नहीं है | कुछ लोगों का मानना है कि राजा चक्र नारायण के वंशजों का शासन चल ही रहा था कि मौका पाकर राजभरों ने पूर्ण मझौलीराज पर कब्जा कर लिया | इतिहासकार श्रीयान भी राजभर की पुस्तक नागभारशिव के इतिहास पृष्ठ 162 के अनुसार 17-19 सदी तक सलेमपुर तथा मझौलीराज में राजभरों का शासन था | अंग्रेजों के समय विशेन वंश का शासन हो गया जिसके वंशज आज भी वहा रहते हैं |

उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि मझौलीराज के उत्कृष्ट का समय 12 वी शताब्दी से 17 वी शताब्दी तक माना जाता है | 12 वी शदी के प्रारम्भ में यहाँ पर राजभर शासन शिवसरन राजा हुए और अपनी सैन्य शक्ति के बल पर राज्य का विस्तार किया | इस मझौलीराज के किले के सम्बन्ध में कुछ ज्यादा साक्ष्य नहीं मिले हैं | किला पुराना जर्जर हो गया हैं | जो टुट -टुट के गिर रहा हैं | फूलमती मंदिर के चारों ओर का तलाब आज भी हैं | मंदिर के समिप एक वृक्ष है जिसे बघऊर बाबा मान के पूजा किया जाता है

यहाँ के लोगों का मानना है कि बघऊर बाबा की पूजा ना करने पर पूजा पूरी नहीं होता हैं | जो शेर फुलमती माता के वर को मारा था उसी के नाम पर इस वृक्ष का पूजा किया जाता हैं | यहाँ के आस - पास के बुजुर्गों का मानना है कि तलाब के अंदर एक सुरंग है जो मंदिर से पूरब दिशा के कुछ दूरी पर दूसरे तलाब में खुलता था | महारानी सुरंग से दूसरे तलाब में जाकर स्नान करती थी और तलाब के किनारे शिवजी का मंदिर था उसमें पूजा करती थी | शिव मंदिर टूट चूका था जो बाद में दूबारा बनवाया गया हैं | मझौलीराज के अंतिम शासक का नाम महाराजा बलभद्र मल्ल मिलता हैं |

निकिता कुशवाहा

चुनार का किला

चुनार किला जो उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले में जो विंध्याचल की पहाड़ियों में गंगा नदी के तट पर स्थित है। चुनार किला का प्राचीन नाम चरणाद्रि था। चुनार किला गंगा तट पर बने ऐतिहासिक पहाड़ी भव्य किला का प्रमुख आकर्षक है, और साथ ही साथ यह चुनार का किला इतिहास की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण माना गया हैं । गंगा से सटे होने की वजह से दुर्ग से टकराकर धारा उत्तरा मुखी हो जाती है और इसके बाद यहीं से गंगा सीधा काशी या वाराणसी की ओर चली जाती है। हजारों वर्ष पुराने दुर्ग का निर्माण उज्जैन के राजा विक्रमादित्य ने जीर्णोद्धार कराया है। चुनार का किला राजा भर्तृहरि के समय का माना जाता है (इसका संदर्भ पुराण में वर्णित राजा भर्तृहरि से है)। इस किले का जिक्र अकबर कालीन इतिहासकार शेष अबुल फजल के आईने अकबरी में भी मिलता है, और साथ ही साथ देवकीनंदन खली ने अपने लोकप्रिय उपन्यास चंद्रकांता में रहस्य रोमांच और एयारी की पृष्ठभूमि इन इलाकों से प्रभावित होकर की थी।

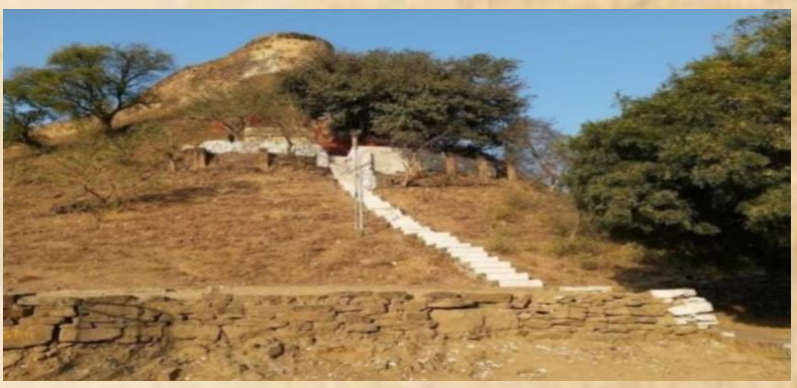

यह दुर्ग चुनार की प्रसिद्ध बलुआ पत्थर से ही निर्मित है। यह किला भूमितल से काफी ऊंची पहाड़ियों पर स्थित है। जिसके दो तरफ गंगा बहती है और एक तरफ गहरी खाई है सैकड़ों वर्ष से धारा बहती रही लेकिन चुनार के किला के दुर्ग की भितियो को कोई खाली नहीं हुआ है। किला का मुख्य द्वार लाल पत्थर का है और उस पर सुंदर नक्काशी भी देखने को मिलती है। अभेद्य गढ़ नदी के दृश्य के साथ विशाल प्राचीन के साथ बनाया गया है। किले से गिरा किले से गिरा क्षेत्र उत्तर दक्षिण दिशा में 750गज (690 मीटर) की लंबाई से घेरा करता है जिसकी अधिकतम ऊंचाई 300 गज (270m) उतरी चेहरे पर नदी के किनारे की करीब है किले की परिधि की लंबाई 1.850गज (1.690m) है सभी द्वारों में से केवल किले के पश्चिमी द्वार पर ही शिलालेख हैं, जो अकबर के काल में मुहम्मद शरीफ खान द्वारा इसके निर्माण के बारे में बताते हैं । इस किले में कई गहरे ताहखाने भी है जिनमें सुरंगे बनी है। इस किले में कुआं का भी साथ है जो 15 फीट 4.60मीटर व्यास का है। किले के निकट सवा सौ या डेढ़ सौ फुट गहरी बावड़ी है। सोनवा मंडप यह मंडप खुला मंडप है जो 28 खंभों का है और वास्तुकला का हिंदू शैली में बनाया गया है।

माना जाता है कि इस सोनवा मंडप पर मेहराब पर एक उत्कीर्ण सोने से भरा हुआ है। सोनवा मंडप में इमारत के सामने एक यार्ड में चार द्वार और एक सुरंग मंडप है। यह उल्लेख मिला है कि 1333 ई में की नेपाली राजा की पुत्री राजकुमारी सोनवा इस सुरंग के माध्यम से गंगा नदी में स्नान करने के लिए अक्सर यहां आती जाती थी।

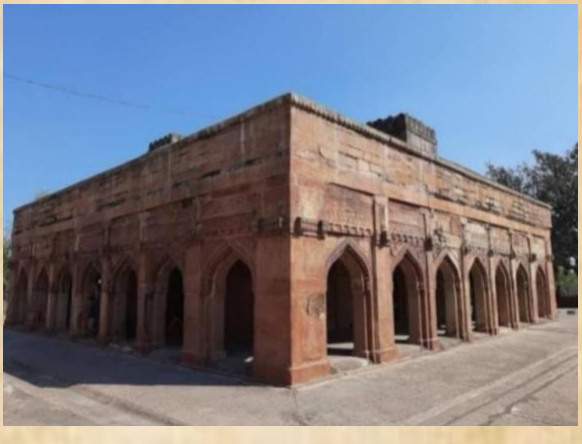

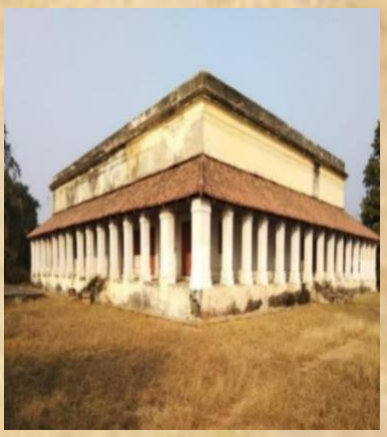

चुनार किले में स्थित बंदीगृह से थोड़ा आगे बढ़ने पर हमें वारेन हेस्टिंग के समय का 1873 में बना एक बंगला भी प्राप्त होता है। जो सन 1781 महाराजा चेतसिंह का अंग्रेजों में जो संघर्ष हुआ उसमें चेतसिंह के द्वारा पराजित होने पर वारेन हेस्टिंग चुनार भाग कर आया और यहीं पर उसे विरासत मिले जिसे वारेन हेस्टिंग्स के बंगला माना जाता है। इसी पर एक कहावत चली आ रही है ....

घोड़े हौदा,हाथी पर जंजीर ।

कर भागा वारेन हैं...।।

आकांक्षा मौर्या

पीतल के बर्तन

धातु की खोज ने प्राचीन समाज की स्थिति को बदल दिया। पीतल एक मिश्र धातु है। यह तांबा एवं जस्ता धातुओं के मिश्रण से बनाया जाता है तथा पीतल के बर्तनों को फूल के बर्तन के नाम से भी जाना जाता है। यदि पीतल के बर्तनों की बात की जाए तो वर्तमान वाराणसी जो कि प्राचीन काल में 16 महाजनपदों में से एक थी, एक महत्वपूर्ण धार्मिक नगर के रूप में बसी थी तथा इसके साथ ही साथ यह एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केंद्र भी था। एक पवित्र स्थल होने के कारण अधिकांश वस्तुएं दीपक ,घंटी ,पूजा के बर्तन, त्रिशूल, देवी देवताओं के मुखोटे तामचीनी या पीतल के जले हुए बर्तन और पीतल की वस्तुओं के भी संयोजन में प्राचीन भारत में ही बनारस में पीतल के बर्तन बनाने की परंपरा चली आ रही है। यहां की सभी वस्तुएं अधिकतर पीतल के धातु से ज्यादा बनती थी, इसलिए पीतल की खपत ज्यादा थी इसके साथ ही साथ बनारस स्थल धार्मिक स्थल होने के कारण यहां पीतल धातु के वस्तुओं का प्रयोग अधिक होता था। वर्तमान समय का लोहटिया बाजार जो कि लोहे के बने सामानों के लिए प्रसिद्ध है, प्राचीन काल में पीतल के बर्तनों के लिए प्रसिद्ध हुआ करता था चूंकि लोहे की खपत होने के कारण पीतल का स्थान लोहे ने ले लिया, उस स्थान का नाम लोहटिया बाजार पड़ गया तथा वर्तमान समय में वहां लोहे की वस्तुएं मिलती है परंतु प्राचीन काल में पीतल के बर्तनों के लिए प्रसिद्ध था। चूंकि पीतल के बर्तनों का चलन दैनिक जीवन में कम हो गया है परंतु शुभ अवसरों पर हमें पीतल के बर्तन या फूल के बर्तन हमें लोगों के घरों में आज भी दिखाई देते हैं।

दानिया बेदार

स्वाद-ए-बनारस

वाराणसी या बनारस जिसे काशी नाम से भी प्रसिद्धि प्राप्त है, एक ऐसा प्रसिद्ध पर्यटन स्थल है जो दुनिया भर से लोगों को आकर्षित करता है। वाराणसी के बारे में सोचते ही दिमाग में सर्वप्रथम यहां के घाट काशी विश्वनाथ मंदिर या शहर की तंग गलियां याद आ जाती है। लेकिन वाराणसी के सिक्के का दूसरा पहलू भी है, जो केवल एक भोजन प्रेमी को ही सबसे पहले याद आता है कि वाराणसी एक प्रसिद्ध भोजन प्रेमियों का स्वर्ग भी है।

चटपटी चाट से लेकर स्वादिष्ट मिठाइयों और ठंडाई के मीठी प्रलोभन तक वाराणसी भोजन प्रेमियों के लिए एक प्रसिद्ध स्थान है। वाराणसी का खाना यहां के लोगों से प्रभावित होता है तथा यहां का व्यंजन इसकी संस्कृति का एक अनिवार्य हिस्सा है और यह मुख्य रूप से बिहार और पश्चिम बंगाल जैसे आसपास के राज्यों से प्रभावित है। वाराणसी का स्ट्रीट फूड क्षेत्र के मंदिरों जितना ही लोकप्रिय है यहां परोसे जाने वाले कुछ स्वादिष्ट व्यंजनों को आजमाएं बिना आपकी यात्रा अधूरी है।

वाराणसी में बनने वाले व्यंजन नएपन और आधुनिकता की स्पर्श के साथ पुराने पारंपरिक स्वाद का एक आदर्श मिश्रण है। इस जीवित शहर की तंग गलियों में पेश किए जाने वाले वाराणसी के मुख में पानी लाने वाले स्ट्रीट फूड को कोई नहीं हरा सकता है। इन सभी चर्चाओं के पश्चात आइए तब वाराणसी के व्यंजन और उनके मनोरम स्वाद और सुगंध में गहराई से उतरते हैं।

<u>कचौरी सब्जी</u>- यह हर बनारसी का लोकप्रिय नाश्ता है, गरमा गरम मिक्स सब्जी के साथ तली हुई कचौरी। यह सुबह के समय प्राप्त होने वाला प्रिय नाश्ता है जिसे खाने की सबसे अच्छी जगह चौक में राम भंडार, दशाश्वमेध के पास मधुर मिलन और लंका पर चाची की दुकान है।

★ ***चाट और गोलगप्पे*** - यह एक ऐसा व्यंजन है जिसे हर भारती शहर में पाया जाता है लेकिन बनारस में चाट के दृश्य को मात देने के लिए आपको काफी मेहनत करनी पड़ेगी । यदि आप गोदौलिया जाए तो वहां काशी चाट भंडार, लक्सा दीना चार्ट और लंका पर बनारसी चाट का आनंद ले सकते हैं और यदि इसके बाद भी पेट में जगह बचे तो गोलगप्पे ,मीठे गोलगप्पे ,समोसे ,दही बड़ा जैसे अन्य स्वाद भी ले सकते हैं।

★ ***बाटी चोखा -*** यह व्यापक रूप से पसंद किया जाने वाला व्यंजन है। यह व्यंजन सड़क के किनारे से लेकर आलीशान रेस्त्रां में भी पाया जाता है। बाटी जो कि भारतीय रोटी का एक प्रकार होता है और चोखा मसले आलू, मिर्च, टमाटर, बैंगन और विभिन्न मसालो के मिश्रण से तैयार किया जाता है।

★ ***सफेद माखन टोस्ट -*** यदि आप वाराणसी के नाश्ते में कचोरी सब्जी का विकल्प नहीं सुनना चाहते हैं तो आप मलदहिया के निकट लक्ष्मी चाय वाले के यहां से सफेद माखन टोस्ट को भी आजमा सकते हैं जहां स्थानीय रूप से खट्टी रोटी के बीच में माखन के साथ कोयले की भट्टी पर सेंक कर दिया जाता है।

★ ***मलाईयो*** - यह वाराणसी में सर्दियों के मौसम में मिलने वाला प्रसिद्ध मिठाई है जिसे दूध को धीरे धीरे मत कर दूध के झाग में केसर और इलायची के सुगंध के साथ बादाम और पिस्ता की सजावट के साथ दिया जाता है। मलइयो वाराणसी का गुप्त रहस्य है, जिसका स्वाद अनुभव केवल इस शाश्वत शहर की यात्रा के दौरान ही प्राप्त किया जा सकता है।

★ ***बनारसी पान -*** बना रसिया पान एक ऐसी चीज है जिसे आपको वाराणसी में जरूर आजमाना चाहिए। पान - सुपारी, चुने और मसालों के मिश्रण के साथ इसे खाया जाता है। पान का एक संस्करण मीठा पान भी है जिसे तंबाकू और चूना रहित लेकिन सौंफ और गुलाब के नरम पंखुड़ियों के साथ बनाया जाता है जो इसके खाद को चार चाँद लगाते हैं।

★ ***रबड़ी जलेबी -*** बनारस जलेबी का राजा हैं। जलेबी या इमरती एक मीठा व्यवहार है जिसे रबड़ी के साथ आजमाना इस व्यवहार को और भी जबरदस्त बना देता है।

★ ***ठंडाई*** - बनारसी ठंडाई अपने ताजा स्वाद और उत्सव की भावना के लिए पूरे भारत में प्रसिद्ध है। बनारस की स्पेशल ठंडाई होली के उत्सव पर भांग की किक के साथ भी उपलब्ध होती है। मौसमी फल के साथ बनी ठंडाई को रबड़ी, आइसक्रीम, बादाम और पिश्ते की ताजगी के साथ बनाया जाता है।

★ ***लस्सी*** - यदि इस बात को अनदेखा करें की लस्सी पंजाब से है, तो बनारस कुछ सबसे अद्भुत लस्सी का घर है। यहां की पारंपरिक लस्सी पहलवान लस्सी लंका और दूसरी कचौड़ी गली मुख्यतः अद्भुत स्वाद के लिए प्रसिद्ध है।

★ ***चाय और कोल्ड कॉफी -*** कुल्लड़ वाली चाय के साथ दिन की शुरुआत करने की खुशी का कोई मुकाबला नहीं है। चाय के शौकीनों के लिए वाराणसी में अदरक और इलायची के साथ गाढ़ी और अधिक उबली हुई चाय उपलब्ध है। साथ ही नींबू की चाय का निष्कर्ष भी यहां उपलब्ध मिलता है जो घाट की शोभा को और बढ़ाता है। कोल्ड कॉफी के लिए बीएचयू का विश्वनाथ मंदिर मुख्यतः विख्यात है।

इन सभी व्यंजनों के अलावा आज के नएपन के व्यंजनों का स्वाद भी वाराणसी में मौजूद है जैसे दक्षिण भारत भारत के व्यंजनों के स्वाद के लिए भेलूपुर में स्थित केरला कैफे और पिज़्ज़ा आदि व्यंजनों के लिए अस्सी पर स्थित पीजेरिया को भी आजमाया जा सकता है। हालांकि बनारस में व्यंजनों की कमी नहीं है, यहां प्राचीन से लेकर आधुनिक सभी प्रकार के खानपान का विकल्प यहां मौजूद है और हर एक व्यंजन का प्रकार यहां बड़ी आसानी से उपलब्ध हो जाता है ।

साक्षी सिंह

रत्नेश्वर मन्दिर

विश्व पटल पर ' मंदिरों के शहर ' के नाम से विख्यात वाराणसी का दूसरा नाम काशी तथा बनारस भी है। वाराणसी में शैव धर्म से सम्बन्धित अनेकानेक प्राचीन मंदिर स्थित है। उन्हीं में से एक रत्नेश्वर महादेव मंदिर भी है जो कि यहाँ के मर्णिकर्णिका घाट पर कुण्ड के ठीक सामने स्थित है। इसे काशी करवट के नाम से भी जाना जाता है। यह ऐतिहासिक शिव मन्दिर तीन सौ सालों से अधिक अधिक का इतिहास समेटे हुए हैं। यह मन्दिर लगभग 40 मीटर ऊँचा और 9 डिग्री तक झुका हुआ है। जबकी पीसा का मीनार (लीनिंग टॉवर जो इटली में है) वो 5 डिग्री अधिक उत्तर पश्चिम की तरफ झुका हुआ है। अर्थात् पीसा की मीनार महज 4 डिग्री जबकि काशी करवट या रत्नेश्वर महादेव मंदिर अपने मूल स्थान से 9 डिग्री उत्तर से पश्चिम की दिशा में झुका है।

इसे मातृऋण मन्दिर भी कहते हैं। गंगा घाट पर जहाँ सारे मन्दिर घाट के ऊपर बने है वही एक अकेला ऐसा मन्दिर है जो घाट के नीचे बना हैं। इस वजह से यह साल के छः महीनों पानी में डूबा ही रहता है। बाढ़ में गंगा का पानी शिखर तक पहुँच जाता है। कुछ वर्ष पूर्व (2015) में आकाशीय बिजली भी इस पर गिरी जिससे शिखर को थोड़ी क्षति हुई। रत्नेश्वर महादेव मंदिर और तारकेश्वर महादेव के बीच के स्थान को जेम्स प्रिंसेप ने बनारस की सबसे पवित्र जगह बताई है। उनके द्वारा बनाए गए एक चित्र में यह मन्दिर बिल्कुल ही सीधा दिखाई देता है। यह चित्र 1860 के बाद ही यह मन्दिर धीरे- धीरे झुकना शुरू हो गया।

इस मन्दिर का वास्तुकला काफी सुन्दर हैं। वह नागर शिखर युक्त और फासना मण्डप है। इस मन्दिर का गर्भगृह 8 महीनों तक जलमग्न होता है। वहाँ के लोगों द्वारा बताया गया है कि मन्दिर 12 या 21 शिवलिंग हैं। और अन्य देवी - देवताएँ भी है। यहाँ पुजारी तब ही पुजा कर सकता है जब यहाँ पानी न हो ऐसा भी माना जाता है कि गंगा माँ शिवलिंग को स्पर्श करती है। यह मन्दिर वास्तुकला का बहुत ही उत्तम उदाहरण हैं। इसका शिखर पिरामडीह है। अर्धमण्डप और गर्भगृह बड़े और विकसित है और अनेक शिखर बने है। जिनके उतार चढाव अत्यन्त शोभायमान लगते है। यह मन्दिर बलुआ पत्थर से बने हैं। यहाँ 12 स्तम्भ है। जिनपे घंटियों का अंकन है। सामने के स्तंम्भों पर पुरूष की आकृति का अंकन है जो हाथों की मुठी बाँधे हुए हैं कानों में भी पहने हुए है। गले में भी दो हार है, बाजुबन्ध, कंगन, सिर पर मुकुट धारण किए हुए है इसका भी अंकन प्राप्त होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह कोई आसन या मुद्रा धारण किए हैं। क्योंकि हाथों कि उँगलियाँ कुछ खुली है, कुछ बंद है वो सब अलग-अलग मुद्रा में है। स्तंम्भों पर पत्तों का भी अंकन प्राप्त होता है। गर्भगृह के प्रवेश द्वार पर दो सिंह का अंकन प्राप्त होता है। अर्धमण्डप से थोड़ा उठा करके मण्डप बनाया गया है। जो आयताकार है और 3 तरफ से खुला है। उसके ऊपर कपोत बनाएँ गए है। शिखर के उठान पर ही चारों तरफ सिंह स्थापित है। यहाँ रथों का भी अंकन प्राप्त होता है। जिसमें भद्र रथ, कर्ण रथ, और प्रति रथ है। कई सहायक शिखर भी है। भूमि आम्लक का भी प्रमाण प्राप्त होता है।

शिखर पर देवकुलिकाएँ बनाई गई है पर कोई देवी और देवता की मूर्ति नहीं प्राप्त होती है। जंघा भाग पर का बंदरों भी अंकन प्राप्त होता है। शिखर के शीर्ष भाग पर एक बड़ा आम्लक, चन्द्रिका, अम्बालिका, कलश, और बीजपूरक है। बड़े आम्लक में ग्रीवा भाग बना है और कमल की फूल के भाँती पत्तियाँ खुली हुई है। यह मन्दिर काफी भव्य और सुन्दर हैं।

इस मन्दिर से जुड़ी कुछ प्रचलित कथाएँ भी प्राप्त होती है। पहली तो यह कि जब रानी अहिल्या बाई होलकर शहर में मन्दिर और कुण्डों का निमार्ण करा रही थी। उसी समय रानी की दासी रत्ना बाई ने भी मर्णिकर्णिका कुण्ड के समीप एक शिव मन्दिर का निर्माण कराने की इच्छा जताई जिसके लिए उन्होंनें अहिल्या बाई से रुपये भी उधार लिए और इसे निर्मित कराया। अहिल्या बाई इसका वैभव देखकर अत्यंत प्रसन्न हुई। उन्होंनें इसे अपने नाम पर रखने को कहा लेकिन दासी ने इसे अन्य नाम रत्नेश्वर महादेव के नाम पर रख दिया। इस पर अहिल्या बाई ने नाराज होकर श्राप दिया कि मन्दिर में कोई पुजा नहीं करेगा। एक और प्रचलित कथा प्राप्त होती है बताया जाता है कि एक माँ के श्राप से मन्दिर टेढ़ा हो गया। 15 वीं शताब्दी में राजा मान सिंह के सेवक ने अपनी माँ रत्ना के लिए बनवाया था। निर्माण के बाद जब सेवक अपनी माँ को मन्दिर दिखाने ले गया तो उसने कहा :-"माँ मैंने तेरे लिए मन्दिर बनवाया है। इसके साथ ही तेरे मातृऋण चुकाता हुँ"। ऐसा कहा जाता है कि माँ रत्ना की नजर पहले जहाँ पड़ी वही से मन्दिर टेढ़ा हो गया। प्रचलित कथाओं द्वारा माँ रत्ना ने बेटे को जवाब दिया था -"बेटा तूने बूरी नीयत से इस मन्दिर का निर्माण करवाया मातृऋण कोई किसी जन्म में नहीं चुका सकता "। मेरा श्राप है कि इस मन्दिर मे कोई पुजा नहीं कर पाएगा। यहाँ साल के अधिकत्तर समय गंगा वास करेंगी। गंगा किनारे यह मन्दिर होने की वजह से जलस्तर बढ़ने पर सबसे पहले रत्नेश्वर महादेव का मंदिर जलमग्न होता है। मन्दिर के साथ पूरा धाट ही झुक गया था। राज्यपाल मोतीलाल की पहल पर धाट फिर से बनवाया गया लेकिन मन्दिर सीधा नहीं किया जा सका।

इसकी विलक्षण वास्तुकला तथा शिल्पकला के कारण यह पीसा के मीनार से भी बेहतर माना जाता है। वाराणसी पुरातत्व विभाग के पुरातत्वविद सुभाष चन्द्र यादव जी कहते है कि मन्दिर का ढाँचा काफी भारी भरकम है। यह मन्दिर नीचे की ओर बना हैं। महीनों पानी में डूब जाता है। इसलिए एक तरफ झुक गया। सुभाष चंद्र यादव जी का मानना है कि जलमग्न होने के कारण यह मन्दिर चर्चा में हैं। अपने मूलरुप से इतनी झुकी हुई होने के बावजूद भी इतने लम्बे समय तक अपने अस्तित्व में बना हैं। पीसा के मीनार से तुलना होने के कारण तथा शिल्पकला और वास्तुकला के कारण से यह मन्दिर न केवल भारत में अपितु समुचे विश्व में काशी करवट /रत्नेश्वर महादेव से प्रसिद्ध हैं।

त्रिशाला पाल

प्रयागराज के पौराणिक स्थल

ग्रहाणांचयथासूर्योनक्षत्राणांयथाशशी।

तीर्थानामुत्तमंतीर्थंप्रयागाख्यमनुत्तमम्।।

- पद्मपुराण

अर्थात्, जिस प्रकार ग्रहों में सूर्य एवं नक्षत्रों में चंद्रमा श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सर्व तीर्थों में प्रयागराज सर्वोत्तम हैं। तीर्थराज प्रयाग का नाम सर्वश्रेष्ठ तीर्थों में लिया जाता है। वह सभी तीर्थों के फलों को देने वाला तथा धर्म, अर्थ, काम, एवं मोक्ष इन चारों का प्रदाता है। पुराणों में प्रयाग को 'तीर्थराज' कहा गया है, प्राचीनकाल एवं मध्य व आधुनिक, तीनों कालों में प्रयाग की महत्ता अक्षुण्ण रही है।

इसकी पुण्यता तथा सांस्कृतिक महत्व को जानकर मुगलशासक अकबर ने इसे इलाहाबास (इलाहाबाद) की संज्ञा प्रदान की जिसका अर्थ है, 'अल्लाहकावास'।

यह स्थल पुरातात्विक अध्ययन की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। यहाँ से प्राप्त अवशेषों से ज्ञात होता है कि यहाँ प्राचीनकाल में चावल का उत्पादन होता था।

<u>प्रयाग के पौराणिक प्राचीन स्थल:</u>

<u>श्रिंग्वेरपुर</u> - इलाहाबाद (सिंगरौर) जिला मुख्यालय से ३५ कि.मी दूर इलाहाबाद– लखनऊ मुख्यमार्ग पर गंगा के किनारे अवस्थित है। यहाँ श्रृंगी ऋषि की समाधि व उनकी पत्नी शांता का मंदिर है। पौराणिक अनुश्रुतियों के अनुसार श्रृंगी ऋषि ने ही कोशल नरेश दशरथ के पुत्रप्राप्ति की मनोकामना हेतु पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया जिसके फलस्वरूप राम, लक्ष्मण, भरत व शत्रुघ्न का जन्म हुआ। श्रीराम वनवास के समय भी यहाँ गंगा नदी में स्नान किये थे।

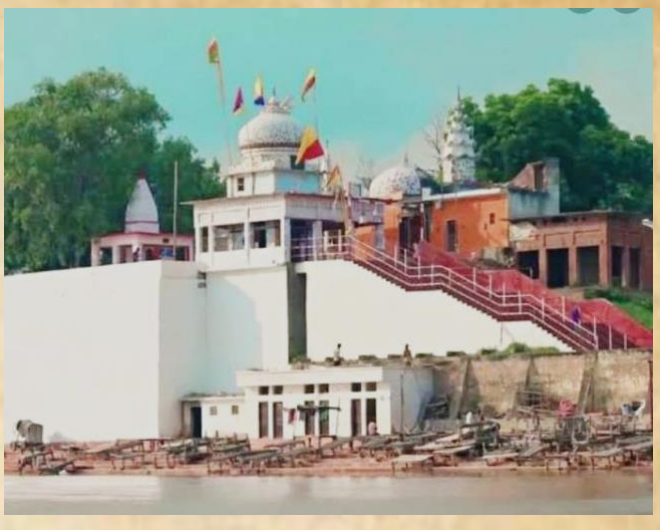

- **<u>हंसकूपवहंसतीर्थ</u>:**

  यह एक प्राचीन कुआँ है, यहाँ निम्नलेख उत्कीर्ण है:
  हंस प्रपत वंती
  हंस रूपी जगम
  नाथ: सदास
  तत्र स्नाने पाने
  हंस गति लभेत
  जल पीने से मनुष्य को मुक्ति प्राप्त होती है। इस कूप का उल्लेख मत्स्य व वाराह पुराणों में किया गया है।

- **<u>प्रयाग का समुद्रकूप</u> :**

  यह पुरानी झूंसी में स्थित है। यह कूप उल्टा किला के अंदर है जो कि एक ऊंचे टीले पर स्थित है। मत्स्य पुराण के एक श्लोक में वर्णित है कि जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन करे व क्रोध पर नियंत्रण करते हुए इस कूप के पास ३ दिन– रात्रि निवास करे उसे सभी पापों से मुक्ति एवं अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है।

समुद्रकूप लंबे समय से ढका पड़ा था। माना जाता है कि मध्यकाल में इसकी पवित्रता को नष्ट होने से बचाने के उद्देश्य से किसी ने इसे ढकवा दिया था। १८८२ ई॰ के आस पास अयोध्या वैष्ण व साधु बाबा सुदर्शन दास ने इस कूप को खुलवाकर इसकी सफाई करवायी व वहीं एक आश्रम व मंदिर बनवाया।

- **<u>भीटा की पुरातात्विक धरोहर</u> :**

  मध्य गंगा घाटी का एक प्राचीन स्थल है भीटा, यह प्रयागराज से लगभग १९ कि.मी दक्षिण इरादतगंज रेलवेस्टेशन के निकट यमुना नदी के दायीं ओर
  अवस्थित है। प्राचीन जैन ग्रंथों में इसे 'विथाव्यपटन 'कहा गया है। यहाँ से 'सहजातीय 'व 'विच्छि 'नामांकित मोहरें भी मिली हैं। यहाँ ३ बड़े टीले भी मिले हैं।

- **<u>अरैल:</u>**

  त्रिवेणी संगम क्षेत्र के सामने यमुना नदी के दक्षिणी तट पर अरैल अवस्थित है । परम्परा के अनुसार इस का प्राचीन नाम अलर्कपुरी था इसे काशी के एक पौराणिक राजा अलर्क ने बसाया था। अब अरैल का पुराना वैभव नष्ट हो चुका है।

- **<u>जमसोत का शिव मंदिर</u>:**

  तमस की सहायक नदी लपटी नदी के उत्तरी तट पर प्रयागराज जिले की मेखा तहसील के कारांव में यह मंदिर अवस्थित है। पूर्व मध्यकाल, विशेष कर कलचुरी राजाओं के समय इस स्थान का विशेष महत्व था । पश्चिमी तथा दक्षिणी भारत से वाराणसी एवं पाटलिपुत्र जाने का प्रमुख मार्ग यहीं से गुजरता था।

- **<u>भट्टग्राम (गढ़वा)</u> :**

  यह स्थल प्रयागराज के करछना तहसील में स्थित है। इसका पुराना नाम भट्टग्राम है, जो गुप्तकालीन प्रसिद्ध नगर था । पहले यह स्थान जंगलों से घिरा हुआ था जहां सर्वप्रथम

१८७२ में काशी निवासी राजा शिवप्रासाद सितार हिंद व फिर अलेक्जेंडर कनिंघम ने जाकर छानबीन की तत्पश्चात गुप्तकालीन अनेक पुराअभिलेख मिले।

गंगा, यमुना तथा सरस्वती नदियों के संगम पर स्थितयहनगरप्रचीनकाल से आध्यात्म का केंद्र रहा है। जिसके कारण यह तीर्थ यात्रियों और धार्मिक लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षितकरता है। यह नगर पौराणिक और आध्यात्मिक ज्ञान से भरा हुआ है।यहाँ पर पवित्रता, धर्म, परंपराओं और वास्तुकला का उत्तम मिश्रण है जो ऐतिहासिक व धार्मिक अनुभव प्रदान करता है। यह नगर उन स्थलों में से एक है जहां कुंभ मेले का आयोजन होता है और भारी संख्या में श्रद्धालु एकत्र होते हैं।

प्रतिमा दुबे

लोलार्क कुंड : एक संक्षिप्त परिचय

परिचय - अन्य प्राचीन देवताओं की तरह भारतीय परंपरा में सूर्य को भी एक महत्वपूर्ण देवता के रूप में जाना जाता रहा है। हम यह देखते हैं कि सूर्य और सूर्य की गतिविधियों से संबंधित बहुत सारे मंदिर विभिन्न स्थानों से मिले हैं। इसके साथ ही समय के साथ सूर्य में होने वाले परिवर्तनों को क्रमिक रूप से त्योहार के रूप में मनाया जाता है।

इसी प्रकार काशी में सूर्य को समर्पित एक कुण्ड है, जिसे लोलार्क कुंड कहते हैं। लोलार्क कुंड असि और गंगा नदियों के संगम पर तुलसी घाट के निकट ही स्थित एक प्राचीन जल भंडार है। लोलार्क कुंड में प्रवेश करने के लिए तीन तरफ से सीढ़ियां बनी है। कुंड के ठीक ऊपर एक संकीर्ण मेहराब हैं। भाद्रपद शुक्ल षष्ठी को सूर्य की किरणें सीधे कुंड पर पड़ती हैं। इसके निकट एक लोलार्क आदित्य मंदिर स्थापित है।

कालक्रम - लोलार्क कुंड की कालावधि सम्भवत: 1000 B.C. मानी जाती है तथा महाभारत में इस स्थल का वर्णन वाराणसी के सबसे पुराने स्थलों के रूप में हुआ है। स्कन्द पुराण के '**काशीखण्ड**' में 13000 से भी अधिक श्लोक है। जिसमें भगवान स्कन्द द्वारा काशी के बारे में बताया गया है ऐसा माना जाता है कि यह घटना सतयुग में हुई थी, किन्तु लिखित रूप से यह 12 वीं शताब्दी के आस-पास प्राप्त हुई थी।

ऐतिहासिक संदर्भ - स्कन्द पुराण के काशीखण्ड में वर्णित एक कथा से पता चलता है कि बहुत समय पहले पृथ्वी पर 60 से भी अधिक वर्षों तक सूखा पड़ गया था। ब्रह्मा ने इसके निवारण के लिए रिपुंजय नामक ऋषि का चयन किया। पृथ्वी पर अधिकार करने के साथ ही उन्होंने ने यह शर्त रखी की अन्य कोई देवता उनके शासन में हस्तक्षेप नहीं करेगा। जिसके कारण सभी देवताओं को पृथ्वी पर छोड़कर जाना पड़ा। शिवजी ने पृथ्वी पर आने के लिए योगियों की सहायता ली। इस प्रयास में असफल होने के पाश्चात्य उन्होंने ने सूर्य को पृथ्वी पर भेजा किन्तु वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति न होने के कारण शिव के क्रोध से बचने के लिए काशी में ही बस जाने का निश्चय किया और स्वयं को 12 रूपों में विभक्त कर स्थापित हो गए, काशी के सौंदर्य से सूर्य का मन लोल (चंचल) हो गया था जिससे इनका एक नाम लोलार्क पड़ा।

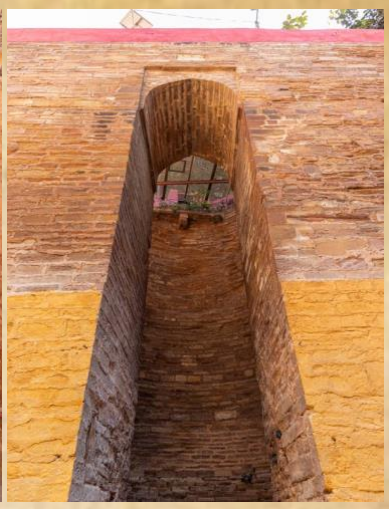

लोलार्क कुंड को लेकर स्थानीय लोगों की यह मान्यता है कि राजा दशरथ को सूर्य का रथ मिला था। जिसके एक पहिया का नट ढीला हो जाने के कारण कैकेयी ने अपने हाथ की उंगली लगाई थी और हाथ की उंगली कट कर गिरी तथा सूर्य का पहिया गिर जाने के कारण इसे **सूर्य कुण्ड** का नाम दिया गया।

यह भी माना जाता है कि सदियों पहले यहां एक विशाल उल्कापिंड गिरा था। जिसके कारण यह कुंड अस्तित्व में आया था। इस कुंड का उल्लेख पवित्र पुस्तकों और शास्त्रों, काशी खण्ड, शिवमहापुराण, विष्णु पुराण में शामिल हैं। 18वीं शताब्दी में एक कुच बिहार स्टेट के राजा इस पवित्र कुंड में डुबकी लगाने के बाद त्वचा रोग से ठीक हो गए। तभी से यह परम्परा चल पड़ी की इस कुंड में स्नान से त्वचा रोग तथा अन्य से छुटकारा मिल सकता हैं।

धार्मिक महत्व - लोलार्क कुंड के बारे में लोगों का मानना है कि इस कुंड का पानी सीधे पाताल से आता था। इसकी एक प्रमुख विशेषता है कि दंपति यहां पर पुत्र रत्न की प्राप्ति के लिए स्नान करने के पश्चात वस्त्र त्याग कर, हरी सब्जि में सुई चुभोकर दान कर देते हैं। पुत्र प्राप्ति के पश्चात् एक बार पुनः धन्यवाद ज्ञापन के लिए आते हैं और उसी स्थान पर पुत्र का चूड़ाकर्म (मुण्डन संस्कार) सम्पन्न कराते हैं।

<u>वास्तुकला एवं स्थापत्य</u> - लोलार्क कुंड में लोलार्क मंदिर है। इस मंदिर की विशेषता यह है कि ये चतुष्कोणीय है। इस मंदिर में स्थापित शिवलिंग पूर्वाभिमुख है इसकी यह विशेषता है कि यह सूर्य को भी समर्पित हैं। मंदिर का गर्भगृह सर्वतोभद्र है व मंदिर में अन्य देवी-देवताओं का भी अंकन है जैसे - नन्दी, विश्वकर्मा, धनवंतरी, बाल-गणेश, शिव सती इत्यादि। इसके अलावा नव ग्रहों का भी अंकन मिलता है। सूर्य कुंड में प्रवेश के लिए तीन प्रवेश द्वार है जिसमें पश्चिम की ओर मुख्य प्रवेशद्वार है। कालांतर में रानी अहिल्याबाई होलकर ने इस स्थान पर कीमती पत्थरों से सौंदर्यीकरण में विशेष योगदान दिया था।

ज्योति

काशी : एक संगम

।। वरुणा च अत्र स्नान नदी वासी तयोमध्ये वाराणसी जपो होमो मरण मरणं देवपूजनम् ।।

"वाराणसी" ! कहते हैं इस नगर का निर्माण स्वयं भगवान विष्णु ने किया था । इसी के संदर्भ में यह लोकोक्ति भी प्रचलित है कि यह भगवान भोलेनाथ के त्रिशूल पर बसी है तथा प्रलय के समय भगवान शंकर द्वारा अपने त्रिशूल के अग्र भाग पर धारण कर ली जाती है। यह नगर अपनी प्राकृतिक संरचना तथा हिंदू व अन्य धर्मों की पूजा तथा विश्वास पद्धति के कारण अत्यंत पवित्र नगर माना जाता है। विश्व की प्राचीन नगरों में से एक इस नगर में धार्मिक विश्वास पद्धतियों तथा परंपराओं यहां के सामुदायिक जीवन में विशिष्ट स्थान है।

इस नगर में लगभग सभी धर्म व महत्वपूर्ण संप्रदायों के संगठन तथा उनके अनुयायी वास करते हैं।

इस संदर्भ में काशी के कुछ निम्नलिखित संप्रदायों का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

शैव संप्रदाय :- शैव संप्रदाय के अंतर्गत अद्वैत उपासना का सिद्धांत महत्वपूर्ण है जिसे श्री शंकराचार्य स्वामी जी ने प्रतिपादित किया । इसका प्रचार प्रसार वाराणसी में विस्तृत रूप से हुआ जान पड़ता है परंतु स्वामी शंकराचार्य जी के मृत्योपरांत अनेक मत- मतांतरो के कारण अनेक लघु संप्रदायों का उद्भव हुआ ।। हालांकि सभी शैव मतावलंबी भगवान शंकर की ही उपासना करते हैं, उनकी पूजा पद्धति में विभिन्नता के कारण उनके भिन्न - भिन्न नाम हैं।

गो मठ :- यह गढ़वाही टोला, चौक पर स्थित है। यहां रहने वाले निवासियों का कहना है कि यहां कई वर्ष पहले साधु संत रहा करते थे परंतु कालांतर से यहां बहुत से लोगों ने आकर बसना प्रारंभ कर दिया । यहां रहने वाले निवासियों में कुछ लोग अपना व्यवसाय करते हैं कुछ लोग कर्मकांड तथा कुछ लोग नौकरी से आजीविका कमाते हैं। इस की वर्तमान स्थिति ठीक नहीं है । यहां रहने वाले निवासी समय - समय पर इमारत की मरम्मत करवाते रहते हैं । मंदिर में ही भगवान नृसिंह की भी प्रतिमा विराजमान है जो बहुत ही सिद्ध तथा प्राचीन मानी जाती है ।

<u>नृसिंह मठ</u> :- यह मठ मणिकर्णिका घाट के पास गढ़वाही टोला, चौक पर स्थित है। इस मठ में योगी राज स्वामी नृसिंह भारती जी की समाधि है। यहां पुराने समय में साधु - संत निवास करते थे परंतु अब यहां वेद शिखा मंदिर नामक विद्यालय चलता है । मठ का रखरखाव अच्छा है विश्व हिंदू परिषद तथा सरकार के सहयोग से यहां के रखरखाव तथा मरम्मत कार्य होता है। इस मठ में भी कोलाहल नृसिंह भगवान की प्रतिमा स्थापित है जो कि प्राचीन मानी जाती है।

<u>वैष्णव संप्रदाय</u> :- इस संप्रदाय की स्थापना तथा विकास में पांच विशिष्ट धर्माचार्यों ने योगदान किया तथा आगे इन्हीं के नाम पर इसके 5 विभाग भी हुए। काशी में इन सभी पांच संप्रदायों के 45 मठ तथा इन संप्रदाय से संबंधित कुछ मठ काफी प्रसिद्ध हैं जिनमें से कुछ मठों के नाम निम्नलिखित है :-

<u>श्री मठ</u> :- इसके संस्थापक रामानंदाचार्य जी थे, जो कि राघवानंद के शिष्य थे । रामानंद का जन्म तारागंज इलाहाबाद में हुआ था । उनकी माता का नाम सुशीला था। आद्य जगद्गुरु रामानंदाचार्य द्वारा स्थापित यह मठ यहां के रहने वाले एक वैष्णव अनुयायी तथा विद्यार्थी के अनुसार 700 साल पुराना है । उन्होंने बताया कि यहां रामानंद की 25000 शिष्य निवास करते थे । जिनमें से द्वादश (12) सिद्ध थे जिनके नाम हैं –

- अनंतानंद
- कबीर
- रैदास
- सुरसुरा
- पद्मावती
- सूखा
- नरहरी
- धना सेन
- पीपा

- योगानंद तथा
- भावानंद

रामानंद चार्य द्वारा स्थापित या मठ 5 किलोमीटर की परिधि में स्थित था तथा वाराणसी की देव दीपावली इन्हीं के द्वारा आरंभ की गई थी । पंचगंगा घाट पर स्थित इस मठ में मालवा गौरव अहिल्याबाई के द्वारा हजारा दीपक का दान किया गया था।

आते तथा निवास कर शिक्षा प्राप्त दीपक आज भी करते हैं। सर्वप्राचीन हजारा वर्तमान में यहां कई वैष्णव धर्मानुयायी तथा विद्यार्थी अध्ययन हेतु यहां दृष्टव्य है। पंचगंगा घाट पर स्थित गुलाबी रंग से सुशोभित या मठ आज वर्तमान में भी घाट की शोभा को बढ़ाता है । यहां कार्तिक एकादशी तथा पूर्णिमा अत्यंत महत्वपूर्ण त्योहारों में से है ।वर्तमान में इसके गुरु आचार्य जगत गुरु रामानंद स्वामी राम नरेशाचार्य जी हैं। इसके अलावा सभी संप्रदायों के मंदिर तथा आश्रमों की अधिकता है।

<u>निर्गुण संप्रदाय</u> :- इस पंथ के प्रवर्तक कबीर दास जी हैं। इनका जन्म काशी में ही हुआ था।

<u>कबीर मठ</u> :- यह मठ कबीर चौरा पर स्थित है। इस स्थल को मूलगादी के भी नाम से जाना जाता है। कबीर का जन्म लहरतारा में हुआ था। इनके जन्म के संदर्भ को लेकर अनुयायियों में मतभेद है । इन्हें नीलू व नीमा नामक मुस्लिम दंपति ने पाला। इनका घर मुलगादी के समीप है। इनका घर नीरू टीला नामक स्थान के नाम से प्रसिद्ध है । कहते हैं निरु व नीमा जुलाहे का कार्य किया करते थे । कबीर के दोहों को सुनने के लिए लोग दूर-दूर से इनके घर आया करते थे । कालांतर में इनकी प्रसिद्धि बढ़ने पर लोगों की संख्या में अधिक वृद्धि हुई जिसके कारण इनका निवास स्थान छोटा पड़ने लगा। अतः पास ही के स्थान (वर्तमान समय में भी बीजक मंदिर) पर मिट्टी के द्वारा चबूतरा बनाया गया जिस पर बैठ कभी अपने दोहों को सुनाया करते थे। कबीर चौरा का पुराना नाम नरहनपुरा था तथा कबीर दास के नाम पर कबीर चबूतरे के नाम से प्रसिद्ध होने लगा । बाद में कबीर चबूतरे के आधार पर ही इस स्थान का नाम कबीरचौरा पड़ गया । वर्तमान समय में भी नरहनपूरा को कबीरचौरा के नाम से जाना जाता है।

उपरोक्त जानकारी हमें वहां के गुरु शिक्षकों में से एक भागीरथ नामक अनुयाई से प्राप्त हुई । उन्होंने आगे बताया कि मुस्लिम बहुली इलाका होने के कारण यहां अन्य धर्मों से संबंध अनुयायियों जो कि कबीर भक्त भी थे, उन्हें असुविधा होने लगी । उनमें से कुछ व्यक्तियों ने जब कबीरदास जी से इसकी शिकायत की तथा अपना स्थान परिवर्तन करने का आग्रह किया तो कबीरदास जी ने बड़े ही सुंदर शब्दों में यह जवाब दिया। -

।। कबीर तेरी झोपड़ी गलकट्टो के पास,

जो करेगा सो भरेगा, तुम क्यों हो तो उदास ।।

कबीर चबूतरे को वर्तमान समय में बीजक मंदिर के नाम से जाना जाता है । कबीर दास जी की रचना जिसमें साखी, सबद, रमैनी आते हैं उनके आधार पर ही इस स्थान का नाम 'बीजक' रखा गया । कबीर दास जी के पश्चात यहां सूरज गोपालदास जी गद्दी पर बैठे। इस मंदिर में बीजक ग्रंथ एवं शीशे में बड़ा कबीर दास जी का चित्र अत्यंत आकर्षक है। प्रवेश द्वार के ठीक बाईं और कबीर दास जी के बचपन की मूर्ति है तथा इसके दाएं और तीन महंत जनों की समाधिया स्थित हैं । मंदिर तथा मंदिर की फर्श संगमरमर द्वारा निर्मित है। इस मठ की व्यवस्था अत्यंत उत्तम है। यहां 25 - 30 साधु तथा कुछ विद्यार्थी निवास करते हैं । यहां आने वाले सभी संप्रदायों के साधुओं के लिए भोजन तथा आवास का प्रबंध भी मिलता है। इस मठ में एक संग्रहालय भी स्थित है। जिसमें चरखा , खड़ाऊ तथा घड़ा व लकड़ी का हत्था रखा गया है जिसे कबीर दास जी द्वारा प्रयोग में लाया जाता था । मठ में कबीरदास जी द्वारा काशी मगहर की यात्रा तक का प्रमाण है तथा इसी मठ के निर्माण संबंधी लेख भी उपलब्ध है। इस मठ का निर्माण 1933 ईस्वी में हुआ। इस मठ का संबंध भारत की राजनेताओं से भी था। सन 1934 ईस्वी में मठ में महात्मा गांधी आए थे। यहां उन्होंने बताया था कि उनकी माताजी भी कबीरपंथी थी तथा महात्मा गांधी के विवाह उपरांत उन्हें वे काठियावाड़ के एक कबीर मंदिर में ले गई तथा महात्मा गांधी को उपर्णा (अंगवस्त्र) दिया। गांधी जी के यहां आने तथा उनके इस मठ से जुड़े सभी वर्णन जिस समाचार पत्र में छपे थे। उसकी प्रति आज भी यहां के मंदिर के संग्रहालय में सुरक्षित है। ऐसा कहा जाता है कि कबीर के संस्कार महात्मा गांधी के अंदर चरखे के रूप में प्रतिबिंबित हुए। महात्मा गांधी के अलावा रविन्द्र नाथ टैगोर जी भी यहां आए थे तथा उन्होंने कबीरदास जी के 100 दोहों का अनुवाद किया। इसके साथ-साथ चित्तमोहन सेन ने कबीरदास जी पर बंगाली में पुस्तक लिखी।

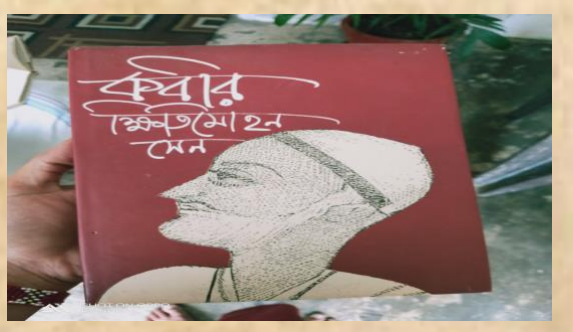

इस मंदिर के पास कबीर विद्यालय भी स्थित है। जहां हिंदी और संस्कृत की पढ़ाई होती है । वर्तमान में यहां अध्यापकों की संख्या 8 तथा विद्यार्थियों की संख्या लगभग 50 है। इसके साथ-साथ पास में ही नीरू धर्मशाला स्थित है जहां कबीरदास जी का बचपन बीता था। निकट ही नीरू व नीमा की मज़ार भी स्थित है। पास ही में कबीर कीर्ति मंदिर तथा लहरतारा कबीर मंदिर / कबीर टोला भी स्थित है । जिनकी (इन दोनों) की देखभाल कबीरपंथी साधु संतों द्वारा की जाती है।

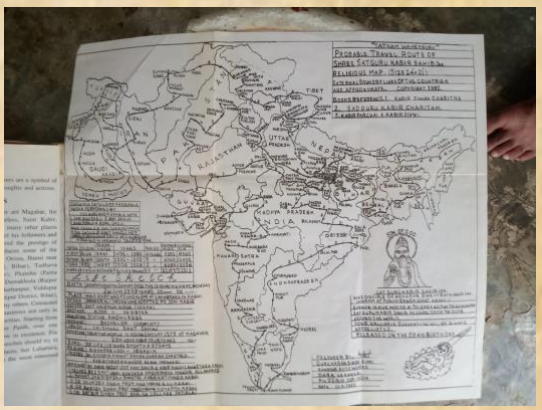

<u>बौद्ध तथा जैन धर्म</u> :- इन दोनों धर्मों से संबंधित कोई मठ या मठ संबंधी जानकारी प्राप्त नहीं होती है वाराणसी में बौद्ध धर्म से संबंधित सर्व महत्वपूर्ण स्थल सारनाथ है जहां गौतम बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश दिया था इसी के साथ - साथ जैन धर्म से संबंधित स्थानों में कई मंदिर प्राप्त होते हैं क्योंकि वाराणसी के साथ जैन धर्म का घनिष्ठ संबंध है जैन धर्म के 24 तीर्थंकरों में से 4 तीर्थंकरों (पार्श्वनाथ, सुपार्श्वनाथ, श्रेयांसनाथ और चंद्रप्रभु) का वाराणसी से संबंध है । वाराणसी में पार्श्वनाथ का भेलूपुर में सुपार्श्वनाथ का भदैनी, श्रेयांसनाथ का सारनाथ तथा चंद्रप्रभु का चंद्रपुरी में अत्यंत सुंदर व दर्शनीय मंदिर स्थित है । इसके अलावा इनके विभिन्न चैत्यालय व मंदिर भी वाराणसी में स्थित है।

वाराणसी की मठ परंपरा पर लिखे गए इस आलेख को कई प्रख्यात लेखकों जैसे - बलदेव उपाध्याय (काशी की पांडित्य परंपरा), मोतीचंद (काशी का इतिहास), पंडित कुबेरनाथ शुक्ल (वाराणसी वैभव), मृदुला जायसवाल (आदि काशी से वाराणसी) आदि पुस्तकों तथा पूर्व आलेखों के साथ स्कंद पुराण के <u>काशी खंड</u> का अध्ययन कर एवं मुख्य रूप से गवेषक (स्वयं मेरे) द्वारा उपर्युक्त सभी मठों का भ्रमण तथा अवलोकन कर लिखा गया है। इन सभी अध्ययन तथा अवलोकन के माध्यम से यह कथन पूर्ण रूप से सिद्ध होता है कि काशी सांप्रदायिक समन्वय तथा ज्ञान परंपरा की अपूर्व राजधानी रही है । यहां बहुत से संप्रदायों का आगमन हुआ तथा वे यहां पहले से अस्तित्वमान संप्रदायों के साथ बिना

मतभेद के एक समान स्तर पर फलित तथा विकसित हुए। यही कारण है कि यहां धार्मिक सहिष्णुता का माहौल पूर्ण रूप से विकसित मिलता है। न सिर्फ प्राचीन काल में अपितु वर्तमान समय में भी हर वर्ष अत्यधिक संख्या में विदेशों से छात्र - छात्राएं यहां वैदिक साहित्य का अध्ययन, संस्कृत अध्ययन, मंत्र उच्चारण सीखने, प्राचीन ग्रंथों को पढ़ने, मानसिक शांति तथा शोध हेतु आते हैं। यह विद्यार्थी वाराणसी के लगभग सभी मंदिरों , घाटों तथा मठों में घूमते या अध्ययन करते आपको मिल जाएंगे। यही कारण है कि काशी को मोक्षदायिनी नगरी भी कहा जाता है क्योंकि यहां आकर व्यक्ति कुछ क्षण के लिए ही सही भौतिक जगत के तर्कों को छोड़कर आध्यात्मिकता में रम जाता है और गुरु ज्ञान की थाती पाकर सदानंद के पथ में मुक्त हो जाता है।

साक्षी सिंह

TEAM'S EXPERIENCE

Editor in Hindi - Sakshi Singh

My experience of working on this magazine was very good. I got a chance to know about a lot new things which enhanced my present state of knowledge. The team I worked with has been thoroughly helpful. I shall be very happy to be engaged again on similar projects in future.

Editor in Hindi - Shivani Seth

This magazine has proved to be a great learning experience for me as a student because I have never been into any such project before. Initially I was quite nervous too, because it's a job of responsibility.

Editor in English - Shweta Mishra

It was really a hard and challenging task of editing a magazine. I would like to say thanks to all my professors for believing in my capabilities.With their guidance the work completed successfully. It was really a matter of pride for me for working as an editor of THATI. The article which I have contributed for the magazine brought best of my writing and observation skills.

Editor in English - Jyoti

I loved being part of editing- team of THATI. it was brilliant experience of working in a team. I feel satisfied designing the idea and bringing it to execution. I would like to be part of similar projects in future.

SPECIAL THANKS TO OUR

Patron

Prof. Rachna Srivastava

-VKMPG College Principal

AND OUR MENTORS

Dr. Nairanjana Srivastava

Dr. Arti Kumari

Dr. Arti Chowdhary

WE ARE ETERNALLY THANKFUL TO

Dr. Nandini Verma

For being truest inspiration